Shodh Prabha: A Multidisciplinary Journal
ISSN: 3108-2726 (Online), Volume-2, Issue-2, (Mar - Apr) 2026

आदिवासी साहित्य की अवधारणा

डॉ. राजीव कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, आर. डी. एण्ड डी. जे. कॉलेज, मुंगेर

शोध सार

प्रस्तुत शोध-पत्र में आदिवासी साहित्य की अवधारणा को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। सभी साहित्य की शाखाओं के अपनी विचार शृंखला होती है। यह विचार शृंखला प्रस्तुत साहित्य के सामने मौजूद चुनौतियों से निर्धारित होती हैं। विचार शृंखला और चुनौतियाँ मिलकर साहित्य के प्रतिमान को तय करते हैं। इस शोध-पत्र में आदिवासी साहित्य के प्रतिमान एवं अवधारणात्मक आधारों को समझने का एक प्रयास है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा के प्रमुख बिन्दुओं को विश्लेषित करने का प्रयास यहाँ किया गया है।

बीज शब्द : आदिवासी साहित्य, लोक साहित्य, आदिवासी अस्मिता, आदिवासी अस्तित्व, विस्थापन, पलायन, उपनिवेशवाद, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श

प्रस्तावना :

आदिवासी साहित्य, हिन्दी साहित्य के इतिहास में पूर्णतः समकालीन घटना है। आदिवासियों का साहित्य इतिहास में लिखित रूप से अनुपलब्ध होने के कारण वाचिक परम्परा में ही दिखाई देता है। समकालीन दौर से पहले मौखिक साहित्य के माध्यम से ही आदिवासियों की संस्कृति का परिचय हो पाता है। आदिवासियों के लोकगीत आदि की रचना जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों को लक्ष्य करके रचे जाते थे। इस कारण उनके लोकगीत, साहित्य के साथ-साथ इतिहास भी हैं। आदिवासी समाज का सामुदायिक जीवनानुभव ही उनके लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यंजित होता है। इस सन्दर्भ में आदिवासी विचारक रामदयाल मुण्डा लिखते हैं, “आदिवासी साहित्य एक विशेष प्रकार का लोक साहित्य है, जिसके केंद्र में होते हैं एक साथ रहने वाले समुदाय के सामूहिक-जीवन अनुभव। सामुदायिकता के वहन व निर्वहन की इसी विलक्षण क्षमता को ही आदिवासी साहित्य के काव्य-सृजन की रीढ़ कहा जा सकता है।”[1] साथ ही वीर भारत तलवार की इस चिन्ता पर भी इस सन्दर्भ में आलोचनात्मक रूप से विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि “आदिवासियों की चर्चा करते हुए सबसे पहली बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में आदिवासी कोई एक या या समरूप समाज नहीं है।”[2]

मुख्य भाग : समकालीन दौर में आदिवासियों के सामूहिक-जीवन अनुभव को ही समाप्त करने की कोशिश दिखाई पड़ती है। आदिवासियों की संस्कृति ही आज खतरे में नज़र आ रही है। इससे न सिर्फ आदिवासी समुदाय अपने नृत्य और गीतों से दूर गया है बल्कि उसके सामुदायिक अनुभव की संस्कृति पर सवाल खड़ा हो गया है। विश्व भर में पूंजीवाद के उत्थान के साथ ही अपने ही जमीन से आदिवासियों की बेदखली की प्रक्रिया भी शुरू हुई। इससे आदिवासियों का जीवन ही लगातार संकट-ग्रस्त होता गया। इस कारण दुनिया भर में आदिवासियों की समस्याओं एवं चुनौतियों को ध्यान में रख कर साहित्य रचने का प्रयास शुरू हुआ। जिसे अलग-अलग देशों में अलग-अलग नामों से अभिहित किया गया। यूरोप और अमेरिका में इसे नेटिव अमेरिकन लिटरेचर, कलर्ड लिटरेचर, स्लेव लिटरेचर और अफ्रीकन-अमेरिकन लिटरेचर के नाम से जाना गया। अफ्रीकन देशों में ब्लैक लिटरेचर और ऑस्ट्रेलिया में अबोरिजिनल लिटरेचर नाम दिया गया। अंग्रेजी में इसे इंडीजिनस लिटरेचर या ट्राइबल लिटरेचर कहा गया। भारत में इसे हिन्दी एवं

अन्य भाषाओं में सामान्यतः 'आदिवासी साहित्य' कहा जाता है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा पर विचार करना अत्यंत आवश्यक है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा के आधार पर ही आदिवासी साहित्य की विशिष्टता एवं आवश्यकता को स्पष्ट किया जा सकता है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक है कि आदिवासी कौन है ? संयुक्त राष्ट्र ने अपने घोषणा पत्र में आदिवासी राष्ट्र या समुदाय को परिभाषित किया है। इसके अनुसार "आदिवासी राष्ट्र का तात्पर्य उन लोगों के वंशजों से है, जो किसी देश की वर्तमान भूमि के पूरे या कुछ भाग पर विश्व के अन्य भागों की किसी भिन्न संस्कृति अथवा नस्ल के लोगों द्वारा पराजित कर दिए जाने या उनके साथ किसी समझौते के तहत अथवा अन्य किसी तरह से वर्चस्वहीन अथवा औपनिवेशिक स्थिति में ढकेल दिए जाने के पहले ही वहाँ रह रहे थे।"[3]

भारत में भी लगभग इसी अवधारणा को स्वीकार किया जाता है। आदिवासियों को यहाँ के मूल निवासी के रूप में स्वीकार किया जाता है। आर्यों के आगमन, ब्रिटिश शासन एवं पूँजीवादी व्यवस्था के प्रसार ने आदिवासियों को लगातार औपनिवेशिक स्थिति में निर्वासित करने का कार्य किया। इस संदर्भ में कुमार सुरेश सिंह का भी मानना है कि आदिवासी भारतीय भूभाग के प्राचीनतम निवासी हैं। उनके अनुसार "भारत के आदिवासी जो देश के विभिन्न दूरवर्ती क्षेत्रों में बसते हैं हमारे सबसे प्राचीन समुदाय हैं। भारतीय समाज एवं भारतीय संस्कृति को उनकी देन कई मायने में आधारभूत है ।"[4] रामदयाल मुण्डा भी इस विचार का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार " ...आदिवासी से हमारा तात्पर्य उन आर्येतर जातियों से है जिन्हें संस्कृत साहित्य में असुर, निषाद, दस्यु, वानर एवं राक्षस प्रभृत नामों से संबोधित किया गया है। .... आर्य जातियाँ जब भारत भूमि में आईं तो उन्हें तथाकथित अनार्य जातियाँ यहाँ पहले से ही बसी मिलीं और क्योंकि उनके पहले के भारतीय निवासियों का पता अभी नहीं है, उन्हें ही आदिवासी, प्रथम निवासी कहना उपयुक्त होगा।"[5]

अर्थात् आदिवासी वह समुदाय है जो भारत में सर्वाधिक प्राचीन समुदाय है। सभ्यता के विकास के साथ जिसे सत्ता से दूर किया जाता रहा। ऐसे में मुख्यधारा से उसका जीवन और साहित्य भी अलग रूप में विकसित होता रहा। ऐसे में आदिवासी साहित्य की अवधारणा को समझना एवं व्याख्यायित करना आवश्यक हो जाता है। आदिवासी समुदाय को हमेशा संघर्ष में रहना पड़ा है। प्रकृति के साथ-साथ सत्ता के साथ भी उसका संघर्ष अनवरत जारी रहा है। गंगा सहाय मीणा आदिवासी साहित्य को इसी संदर्भ में समझे जाने का निवेदन करते हैं। आदिवासी साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं, "आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं द्वारा किये गये और किए जा रहे शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी-अस्मिता व अस्तित्व के संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहत्य है। यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्मनिर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[6]

अर्थात् आदिवासी साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है जो आदिवासी-अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा की भावना से प्रेरित है। गंगा सहाय मीणा आदिवासी साहित्य को परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप मानते हैं। उनके अनुसार आदिवासियों का जीवन संघर्ष ही साहित्य में रचनात्मक रूप से प्रकट हो रहा है। एक तरफ आदिवासी साहित्य जल, जंगल और जमीन को बचाने की मुहिम है तो दूसरी तरफ वह आदिवासियों पर वर्षों से चले आ रहे शोषण का प्रतिकार है। आदिवासी साहित्य मानवीय मूल्यों पर आधारित वह साहित्य है जो आदिवासियों की रक्षा के साथ शेष विश्व की बेहतरी के लिए भी प्रयासरत है।

रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य को परिभाषित करती हुई लिखती हैं, "आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है।

वह प्रकृति का सहयोगी- सह-अस्तित्व का अभ्यस्त, ऊँच-नीच, भेद-भाव, छल-कपट से दूर है। वह जमाखोरी या संपत्ति जुटाने की भावना से मुक्त है। वह अन्याय का विरोधी और सामाजिक न्याय का पक्षधर है। उसके साहित्य में इन्हीं सबकी अभिव्यक्ति है। जीवन की समस्याएँ और प्रकृति से लगाव उसके साहित्य का आधार है।"[7]

यहाँ आदिवासी साहित्य की मूल प्रवृत्तियों का उल्लेख रमणिका गुप्ता करती हैं। जीवन की समस्याओं और प्रकृति से लगाव को वह आदिवासी साहित्य का आधार मानती हैं। आदिकाल से प्रकृति के साथ सखत्व और संघर्ष के माध्यम से ही आदिवासियों ने अपने जीवन को निर्मित और विकसित किया है। इसलिए आदिवासी जीवन से प्यार करने वाला समुदाय है। जीवन को वह एक उत्सव के रूप में स्वीकार करता है। अतएव ऊँच-नीच, भेद-भाव, छल-कपट एवं संपत्ति एकत्रित करने जैसी चीजों को वह महत्त्व नहीं देता। वह प्रकृति के साथ ही मानव जीवन का अस्तित्व स्वीकार करता है। इसलिए आदिवासी प्रकृति का मुनाफे के लिए दोहन के विरूद्ध होता है। संपत्ति में सबका समान अधिकार स्वीकार करता है। यही सारे विचार उनके साहित्य में भी प्रस्फुटित होते हैं। आदिवासियों का जीवन-दर्शन ही आदिवासी साहित्य का मूल है। वह प्रकृति के साथ मनुष्यों से भी प्यार करने वाले समुदाय है। उनका साहित्य भी उनके प्रेम के आदर्श को ही स्थापित करता है।

इस संदर्भ में वंदना टेटे लिखती हैं, "प्रेम और प्रकृति। यह वे दो स्थायी भाव है आदिवासी जीवन के जिन पर दो हजार सालों तक निरंतर रचनाएँ होती रहीं। असहमति और रचाव बचाव का जो साहित्य है, वह मात्र हाल के दो ढाई सौ सालों के दौरान रचा गया है।"[8]

आदिवासी प्रकृति के साथ लोगों से भी प्रेम किए जाने के समर्थक हैं। प्रकृति के साथ-साथ सामुदायिकता के अभाव में भी आदिवासी, जीवन की कल्पना नहीं करते। इसलिए वंदना टेटे आदिवासी जीवन के इन दोनों बातों को महत्त्वपूर्ण ढंग से रेखांकित करती हैं। उनके अनुसार असहमति और रचाव बचाव का साहित्य बाद में विकसित हुआ। आदिवासी प्रेम और प्रकृति को संरक्षित करने के प्रयास में ही प्रतिरोध को महत्त्व देते हैं। आदिवासी साहित्य में मौजूद प्रतिरोध की प्रवृत्ति अंततः प्रकृति और प्रेम को निरंतर विकसित करते जाने की ही समर्थक है।

आदिवासी साहित्य के माध्यम से अंकुरित होता आदिवासी-विमर्श भी, आदिवासी जीवन-दर्शन से ही अनुप्राणित है। वंदना टेटे इसे स्पष्ट करती हुई लिखती हैं, "आदिवासी ज्ञान परंपरा में विमर्श भी एक उन्मुक्त और सतत चलने वाली, जीवन से जुड़ी हुई प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया में विशेषज्ञों की बजाय संपूर्ण गाँव-समाज और समुदाय समान रूप से भागीदार होता है। हर आयु वर्ग और अनुभव समूह के आम लोग। विमर्श हमारे लिए प्रतिदिन का व्यवहार है जैसे हम दूसरे दैनिक कार्यों को संपन्न करते हैं।"[9]

वंदना टेटे आदिवासी-विमर्श की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए अन्य विमर्शों से इसके मूल अंतर को भी उद्घाटित करती हैं। उनके अनुसार अन्य विमर्शों में जहाँ विशेषज्ञों की भूमिका प्रमुख होती है वहीं आदिवासी-विमर्श में सामुदायिक अनुभव की प्रमुख भूमिका होती है। जिसमें बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी शामिल होते हैं। बौद्धिकता की जगह परस्पर विचार-विमर्श एवं समस्त समुदाय के अनुभव को यहाँ विशेष महत्त्व दिया जाता है। वह यह भी रेखांकित करती हैं कि आदिवासी समाज लगातार अनुभवों से सीखता हुआ पल्लवित-विकसित होता है। इसलिए विमर्श यहाँ दैनंदिन जीवन का ही एक हिस्सा है जो दैनंदिन व्यवहार एवं कार्य में लगातार जारी रहता है।

वंदना टेटे आदिवासी जीवन-दर्शन के आलोक में ही, आदिवासी-विमर्श के महत्त्व को रेखांकित करती हैं। आदिवासी-विमर्श के स्वरूप एवं उद्देश्य को स्पष्ट करती हुई, वह लिखती हैं, "इस परिदृश्य में विमर्श की पहली आवश्यकता

आदिवासी साहित्य की अवधारणा को मजबूती से रेखांकित करना है जिसमें व्यक्ति की बजाय सामूहिक जीवन-दर्शन को आदिकाल से सर्वोपरि मानने की हमारी परंपरा रही है। हमारे लिए मिथकों और ऐतिहासिक संदर्भों का अर्थ सिर्फ इंसान और उसकी आत्मिक भौतिक आवश्यकताएं कभी नहीं रहीं। पूरी समष्टि, जिसमें प्रकृति भी एक सर्वोच्च नियामक व्यवस्था है, आदिवासी विश्व का दार्शनिक केन्द्र रहा है और हमेशा रहेगा। साहित्य भी इस दार्शनिक केन्द्र में कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है, बल्कि वह भी सभी कला रूपों के साथ ही अविभाज्य रूप से जुड़कर समग्र अभिव्यक्ति का एक भागीदार बनता है।"[10]

वंदना टेटे आदिवासी-विमर्शकारों से आदिवासी जीवन-दर्शन को केन्द्र में रखकर आदिवासी-विमर्श को विकसित करने का निवेदन करती हैं। व्यक्ति की जगह सामूहिक जीवन-दर्शन एवं प्रकृति की नियामक सत्ता में महत्त्व देना जरूरी है। वह यह भी प्रमुखता से रेखांकित करती हैं कि आदिवासी जीवन में साहित्य की स्वायत्त सत्ता नहीं हो सकती। इसलिए आदिवासी-विमर्श का एक दायित्व यह भी है कि वह आदिवासी जीवन के अन्य कला रूपों से जोड़कर ही साहित्य एवं विचार की परंपरा का विकास करे। जीवन एवं विचार दोनों ही जगह सामूहिकता को केन्द्र में रखना, आदिवासी-विमर्श का एक प्रमुख उद्देश्य है।

आदिवासी साहित्य की अवधारणा में सामूहिकता का विशेष महत्त्व है और इस सामूहिकता के केन्द्र में प्रेम और प्रकृति है। आदिवासी साहित्य में प्रेम और प्रकृति के संरक्षण और विकास को व्यापक महत्त्व प्राप्त है परंतु प्रतिरोध आदिवासी साहित्य का आज प्रमुख स्वर है। प्रकृति से विस्थापित होते जाने के कारण आदिवासी समुदाय आज अपने जीवन की रक्षा के लिए प्रतिरोध करने के लिए मजबूर है। इसलिए उनके साहित्य में भी प्रतिरोध का स्वर सुनाई देता है। आदिवासी साहित्य की इस विशेषता को स्पष्ट करती हुई रमणिका गुप्ता लिखती हैं, "आदिवासी साहित्य केवल साहित्य ही नहीं है बल्कि यह मुद्दों पर आधारित प्रकृति, स्त्री और कमजोर लोगों के अधिकारों की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध, परिवर्तनकामी तथा संकल्पबद्ध साहित्य है।"[11]

निष्कर्ष :

आदिवासी राज्य के आखिरी एवं दूरस्थ छोर पर निवास करने वाला समुदाय है। इसलिए आदिवासियों का संघर्ष समाज के अंतिम व्यक्ति की लड़ाई है। आदिवासी साहित्य इसी संघर्ष का रचनात्मक हस्तक्षेप है। इसलिए आदिवासी साहित्य प्रकारांतर से उपेक्षित समुदायों के मुद्दों को स्वर देने वाला प्रतिबद्ध साहित्य है। यह जितना प्रतिबद्ध है उतना ही परिवर्तनकामी भी है। आदिवासी साहित्य, साहित्य मात्र न होकर एक सामाजिक हस्तक्षेप है। प्रकृति के साथ स्त्री, दलित, आदिवासी एवं अन्य कमजोर तबकों की चिंताओं को भी स्वर देता है। अंततः आदिवासी साहित्य जीवन के संरक्षण एवं उत्सव का साहित्य है, जिसमें प्रेम और प्रतिरोध इसके दो प्रमुख तत्व हैं। आदिवासी साहित्य मानव समाज की बेहतरी का साहित्य है।

संदर्भ सूची

1. रमणिका गुप्ता (संपा.), युद्धरत आम आदमी, दिसम्बर 2005, रामदयाल मुण्डा का लेख – 'अस्तित्व के लिए संघर्ष - आदिवासी साहित्य का मुख्य सरोकार', पृ. सं. 20
2. वीर भारत तलवार, उत्पीड़ितों के विमर्श, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2025, पृ. सं. -29
3. उद्धृत, रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. सं. 52

4. रामदयाल मुण्डा, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2009, पृ. सं. 8
5. उपरोक्त, पृ. सं. 13
6. गंगा सहाय मीणा (संपा.), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2014, पृ. सं. 9
7. उपरोक्त, आदिवासी साहित्य विमर्श, रमणिका गुप्ता का लेख –'आदिवासी लेखन : एक उभरती चेतना', पृ. सं. 35
8. वंदना टेटे, आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, 2013, पृ. सं. 20
9. उपरोक्त, पृ. सं. 6
10. उपरोक्त, पृ. सं. 6
11. रमणिका गुप्ता(संपा.), युद्धरत आम आदमी, दिसम्बर 2005, रमणिका गुप्ता का लेख – 'व्यवस्था का षड्यंत्र समझ रहे हैं आदिवासी', पृ. सं. 12